RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-03
Issue-09
September -2018

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

दयानंद सरस्वती का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान

डॉ0 पूर्णिमा कुमारी

इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

महर्षि दयानन्द ने अपने प्रायः सभी ग्रन्थों में शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डाला है तथा प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। उनका कथन है कि विद्या की कोश ही एक अक्षय कोश हैं इस कोश की विशेषता यह है कि इसे जितना अधिक व्यय करें यह उतना ही अधिक बढ़ता जाता है। अन्य सब कोश व्यय करने से घट जाते है और उसमें से दायभागी भी अपना भाग ले लेते हैं। किन्तु विद्या कोश का चोर या दायभागी कोई भी नहीं हो सकता। इस कोश की रक्षा और वृद्धि करने का दायित्व राजा और प्रजा दोनों पर है। मनुस्मृति में कहा गया है कि–

''परस्पर विरूद्धानाम तेषां च समुपर्ननम।
कन्यानां सप्रदानं च कुमारापां चरक्षणम्।।

अर्थात् राजा को चाहिये कि सब कन्या और लड़कों को उक्त समय से उक्त समय तक ब्रह्मचर्य में रखकर विद्वान बनाये। जो कोई इस आज्ञा को न माने उसके माता–पिता को दण्ड दे। अर्थात् राजा की आज्ञा से आठ वर्ष के पश्चात् लड़का और लड़की किसी के घर में न रहने पाये, वे ब्रह्मचर्य कुल में रहें। जब तक समावर्त्तन (दीक्षान्त) का समय न आये तब तक विवाह न होने पाए।''

स्वामी दयानन्द ब्रह्मचर्य व इन्द्रिय संयम पर अत्यंत बल देते थे और चाहते थे कि विद्या प्राप्त करते समय कोई भी ऐसा प्रलोभन न हो जिससे ये गुण खंडित हो। इसी को ध्यान में रखकर उन्होंने सह शिक्षा का विरोध किया। इनका कहना था कि यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दोनों विषम लिंग एक–दूसरे के लिये आकर्षण के केन्द्र है, और एक–दूसरे के दर्शनादि होने पर एक–दूसरे के प्रति आकर्षण का होना स्वाभाविक है। उस स्थिति में उनका ब्रह्मचर्य अखंडित न रह सकेगा। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये दोनों के विद्यालयों का पृथक्–पृथक् होना आवश्यक है।''

गुरू के योग्यता की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है कि–

''जो विद्यार्थियों को अत्यंत प्रेम से धर्मयुक्त व्यवहार की शिक्षा और विद्वान् बनाने के लिए तन, मन और धन से प्रयत्न करे उसको आचार्य कहते हैं।

''जो श्रेष्ठ आचार को ग्रहण कराके सब विद्यार्थियों को पढ़ा दे उसको आचार्य कहते हैं।

''जो सांगोपांग वेद विद्याओं का अध्यापक, सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह आचार्य कहलाता है।

अथर्ववेद में गुरू और शिष्य के संबंध को अत्यंत गहन व्यक्त किया गया है–

''आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः।
तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसपन्तिदेवाः।''

अर्थात् गुरू शिष्य को ऐसे धारण करता है जैसे माता अपने गर्भ को धारण करती है। गर्भ धारण करने की उपमा जहाँ गुरू तथा शिष्य की निकटता व एक दूसरे के लिये वृत्ति चिन्तन की पराकाष्ठा को सूचित करती है वहाँ साथ ही यह गुरू कुलवास में पिता–पुत्र अथवा माँ पुत्र की तरह एक–दूसरे के सुख–दुःख के भागी भी बनने को प्रकट करती है। उपनयन संस्कार के समय गुरू अपने शिष्य के प्रति जो उद्गार व्यक्त करता है उससे दोनों के संबंध पर प्रकाश पड़ता है–

''मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्त मनुचितं ते त्तु''
म्म वाचमें नुषस्व वृहस्पति वा नियुनक्तु मह्यम्''

अर्थात् हे बालक! तेरे हृदय को मैं अपने अधीन करता हूँ। तेरा चित्त मेरे चित्त के अनुकूल सदा रहे। तु मेरी वाणी को एकाग्र मन व प्रीति से सुनकर उसके अर्थ का सेवन किया करे। वृहस्पति रूप–परमात्मा तुझको मुझसे युक्त करें।

स्वामी दयानन्द प्रत्येक छात्र के लिये संस्कृत का अध्ययन आवश्यक समझते थे। दयानन्द ने शिक्षा का प्रारंभ भाषा के पूर्ण ज्ञान के साथ किया है। भाषा के अध्ययन के बाद उन्होंने साहित्य के अध्ययन का परामर्श दिया है। साहित्य के अध्ययन के बाद दर्शनों का अध्ययन अपेक्षित है। उनके अनुसार ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मणों के साहित चारों वेदों को पढ़ना योग्य है। उन्होंने यहाँ पर ऋग्वेद को उद्धृत किया है–

''ऋचो अक्षरो परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वेनिषदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्त द्वि दुस्त इमे समासते।।

दयानन्द की मान्यता है कि वेद सब विद्याओं का कोश है। उसके अध्ययन से प्रत्येक शास्त्र का ज्ञान हो जाता है। इसके अध्ययन से परमात्मा और उसकी सृष्टि का सूक्ष्म ज्ञान हो जाता है। वेदों के पढ़ने के बाद चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है जिसमें चरक, सुश्रुत आदि ऋषि मुनी के वैद्यक शास्त्र अति है। चिकित्सा शास्त्र के बाद राजनीति और

RRIJM 2015, All Rights Reserved

सैन्य शिक्षा का अध्ययन आवश्यक है। राजनीति राजपुरूष के लिये तथा सैन्य शिक्षा प्रजा के लिये। इसके बाद क्रमशः संगीत, अर्थशास्त्र, हस्तकला, गणित, विज्ञान व ज्योतिष का अध्ययन आवश्यक है।

स्वामी दयानन्द ने इस बात पर बल दिया है कि पढ़े हुए विद्या के अनुसार आचरण आवश्यक है। उनका कहना है कि जो मनुष्य केवल पाठ–मात्र ही करता है, उसका वह पढ़ना अंधकार रूप हो जाता है। जैसे अग्नि के बिना सूरो इंधन में दाह और प्रकाश नहीं होता वैसे ही अर्थज्ञान के बिना अध्ययन भी ज्ञान प्रकाश रहित होता है। वह अपने अविद्या रूपी प्रकाश का कभी नाश नहीं कर सकता है।

''यद धीतम विज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कै धो नतज्जवलतिकहिं चितम्''
(निरूक्त 1/18)

स्वामी दयानन्द का विचार है कि बड़े–बड़े पाठान्तर करने से ही केवल विद्या उत्पन्न नहीं होती। पाठान्तर यह विद्या का साधन है विद्या नहीं। कोराज्ञान व्यक्ति पर भार में समान होता है। स्वामी जी का विचार है कि विद्या वही है जो व्यक्ति को स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम कर सके। पुस्तकीय ज्ञान केवल व्यक्ति की बुद्धि तीक्ष्ण करने के लिए है। स्वामी जी ने यजुर्वेद के मंत्र को उद्धृत किया है सच्ची शिक्षा से मोक्ष की प्राप्ति होती है–

''विद्यां चा विद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्या मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।।

स्वामी जी ने छात्रों की विनम्रता पर जोर दिया है। उन्होंने कहा है कि जो सदा सुशील, विद्वान् और वृद्धों की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार सदा बढ़ते है और जो ऐसा नहीं करते उनके ये चार नहीं बढ़ते–

''अभिवादनशीलस्य नित्यं वृदोपसेविनः।
चत्वारि तस्य बर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।।

स्वामी दयानन्द का विचार था कि शिक्षा सबके लिये है। समाज के किसी वर्ग को वे शिक्षा से वंचित नहीं रखना चाहते थे। स्त्रियों और शूद्रों को भी वे विद्या ग्रहण का अधिकारी मानते थे। उन्होंने लिखा है कि ''इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेषकर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास कराएं। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं, वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, राजय और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। ...जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई भी पाखंड रूप अधर्मयुक्त मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता इसलिये सब वर्णों के स्त्री–पुरूषों विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। स्वामी जी ने यजुर्वेद के ''यक्षेमा वाचं कल्याणी भावदानि जनेभ्य। ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याद च स्वाद चारणाय'' को उद्धृत करके यह प्रतिपादित किया है कि ''...ईश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और (स्वाय) अपने मृत्य वा स्त्रियादि (अरणाय) और अति शूद्रादि के लिये वेदों का प्रकाश किया है। क्योंकि उनका विचार था कि जन्म से कोई शूद्र नहीं होता, शिक्षा और संस्कार द्वारा ही कोई व्यक्ति ब्राह्मण बनता है। वेद–शास्त्रों के पठन–पाठन को केवल ब्राह्मण तक ही सीमित रखने तथा समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को शिक्षा से वंचित रखने की परंपरा जो भारत में विकसित हो गयी थी उसका स्वामी जी ने प्रबल विरोध किया। आर्य समाज ने उनके इस विचार का अविकल्प रूप से अनुसरण किया तथा अपनी शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिये चार वर्णों के लिये खोल दिया।

(1) शिक्षा के संबंध में स्वामी दयानन्द के विचार क्रांतिकारी थे। आधुनिक शिक्षण संस्थाओं से दयानन्द के विचार नहीं मिलते–जुलते थे। उनकी शिक्षा व्यवस्था संक्षेप में, निम्नलिखित थी– ''शिक्ष का उद्देश्य चरित्र निर्माण करना है। चरित्र निर्माण की शिक्षा गुरूकुल शिक्षा प्रणाली में ही संभव है, अतः प्राचीन पद्धति के गुरूकुलों की स्थापना आवश्यक है।
(2) पाठ्य ग्रन्थों में उन्हीं पुस्तकों का समावेश होना चाहिये जो साक्षात कृत धर्मी, मंत्रद्रष्टा ऋषियों की कृतियाँ है। अनार्य ग्रन्थों का पठन–पाठन में समावेश नहीं होना चाहिये।
(3) ईश्वरीय ज्ञानवेद तथा संस्कृत शास्त्रों की शिक्षा को सर्वोपरि प्राथमिकता दी जानी चाहिये।
(4) शास्त्रों के साथ–साथ प्राविधिक कला–कौशल की शिक्षा भी जीवनयापन की दृष्टि से आवश्यक है।
(5) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। भारत की राष्ट्रभाषा आर्य भाषा (हिन्दी) ही देश की शिक्षा का सार्वदेशिक माध्यम होना चाहिये।
(6) बालक और बालिकाओं का सह शिक्षण चरित्र विघातक है फलतः हानिकार है।
(7) कन्याओं की शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है जितनी बालकों की।
(8) शिक्षा के क्षेत्र में राजा और रंक, गरीब और अमीर का भेदभाव नहीं होना चाहिये। प्रत्येक छात्र को अपनी योग्यता के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने का समान रूप से अधिकार मिलना चाहिये।
(9) अवसर और अनुकूलता होने पर विदेशी भाषायें भी सीखना वांछनीय है।
(10) शिक्षा के द्वारा स्वाभिमान, स्वदेश प्रेम, ईश्वर भक्ति तथा स्वालंबन जैसे गुणों का विकास किया जाना अपेक्षित है।

अपनी इस पाठ्यविधि का क्रियान्वयन करने के लिये स्वामी जी ने स्वयं उत्तर प्रदेश के कई नगरों में संस्कृत पाठशालाओं की स्थापना की। धनी वर्ग को इस पुनीत कार्य में आर्थिक सहायता देने के लिये प्रेरित किया। इन पाठशालाओं का आदर्श प्राचीन गुरूकुल–प्रणाली के अनुरूप ही रखा गया जिसके अनुसार छात्र और अध्यापक एक–दूसरे के सम्पर्क में

रहकर चरित्र निर्माण के साथ–साथ विद्याध्ययन भी कर सकें। स्वामीजी ने ये पाठशालायें कासगंज, फरूखावाद मिर्जापुर, लेसर काशी आदि स्थानों में स्थापित किया लेकिन योग्य अध्यापकों के अभाव में तथा आर्य ग्रन्थों के पठन–पाठन में छात्रों द्वारा विशेष अभिरूचि व्यक्त न किये जाने के कारण स्वामीजी ने अपने जीवन काल में ही इन पाठशालाओं को बन्द कर दिया। लेकिन यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि स्वामी जी के ये कार्य प्रशंसनीय थे। इन पाठशालाओं में ही आर्य समाज द्वारा कालान्तर में स्थापित गुरूकुल शिक्षा प्रणली के बीज छिपे थे, जिसने भारतीय शिक्षा क्षेत्र में युगान्तकारी परिवर्तन किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, आर्यसमाज का इतिहास, खंड 3, पृ. 104।
2. डॉ. भवानी लाल भारतीय, स्वामी श्रद्धानन्द जीवन चरित्र एक विश्लेषणात्मक दृष्टि आर्य जगत 25 दिसंबर 1988, पृ. 5।
3. धर्मवीर विद्यालंकार आचार्य, जन्मजात सफल सेनानी स्वामी श्रद्धानन्द, 1986, पृ. 4।
4. यशपाल आर्य बन्धु, समय की प्रवाह को बदलने वाला–आर्यजगत, 1988, पृ. 8।
5. डॉ. भवानी लाल भारतीय–स्वामी श्रद्धानन्द ग्रंथावली, भाग–1, पृ. 71, 72।
6. डॉ. विरेन्द्र कुमार वर्मा, जब तक सत्य मेरे पास है मुझे किसका भय–आर्य जगत, 1988, पृ. 12।
7. डॉ. सत्यव्रत राजेश, अमर हुतारूमा स्वामी श्रद्धानंद 1986, आर्य जगत स्वमी श्रद्धानंद विशेषांक, पृ. 6।
8. डॉ. धर्मवीर विद्यालंकार, जन्मजात सफल सेनानी स्वामी श्रद्धानन्द आर्यजगत स्वामी श्रद्धानन्द, 1986, पृ. 4।

RRIJM 2015, All Rights Reserved